IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 27, Issue 10, Series 1 (October, 2022) 72-77
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदभाष्य में अहिंसा

टेसू राज गौड़[1]

आचार्य पाणिनि ने हन् धातु हिंसा और गति अर्थ में पढ़ी है।[2] प्राचीन आचार्यों ने ज्ञान, गमन और प्राप्ति-ये तीन अर्थ गति पद के माने हैं। इस कारण हन् धातु के मार डालना, प्राप्त करना, जाना-ये तीन अर्थ हैं। महर्षि पतञ्जलि प्रोक्त योगांगों[3] में प्रथमांग यम को माना जाता है, जिसके अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का परिगणन होता है। तदोपरान्त यमांगों में प्रथम अहिंसा पद का भाव सर्वथा सब प्रकार से अर्थात् शरीर, वाणी और मन से सब कालों में पीड़ा देने की भावना का परित्याग तथा वैर भावना न रखने का नाम अहिंसा है[4] जिसमें द्रोह शब्द 'द्रुह जिंघासायाम्'[5] धातु से निष्पन्न होता है, जिसके अर्थ मारने की इच्छा है। कोषकार ने द्रुह धातु के विभिन्न अर्थ दिखाये हैं, जिनमें द्रोह-जिघांसा-मारने की इच्छा, अभिद्रोह-चहुं और से सब प्रकार से किसी को मारने-समाप्त करने, नष्ट करने, नेस्तनाबूद करने, तहस-नहस करने की भावना आदि अर्थ आते हैं।[6] ऐसी भावना को समाप्त करके जो व्यवहार किया जाता है, उसे अनभिद्रोह, अर्थात् अहिंसा कहते हैं।[7] अहिंसा पद का अर्थ अनिष्टकारिता का अभाव, किसी प्राणी को न मारना, मन-वचन-कर्म से किसी को पीड़ा न देना है[8]। महर्षि पतञ्जलि के योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास की दृष्टि में सूत्र में अहिंसा से अगले सत्यादि चार यम और नियमादि अहिंसामूलक अर्थात् अंहिसा पर ही आश्रित हैं। अहिंसा की सिद्धि करना ही उनकात्रमुख्य उद्देश्य है, अतः अहिंसा की सिद्धि के लिए ही दूसरे यम व नियम आदि का प्रतिपादन करते है। वे सब इस अहिंसा को निर्मल रूप करने के लिए ही ग्रहण किये जाते है, जीवन में अपनाएं जाते है।

योगदर्शन के भाष्य में अहिंसा का भाव इस प्रकार प्रकट किया है-'वह (योग-साधक) ब्राह्मण जैसे-जैसे बहुत से यमादि व्रतों का अनुष्ठान करना चाहता है, वैसे-वैसे प्रमाद से किये हुए हिंसा आदि के कारण रूप लोभ, क्रोध और मोह आदि रूप पापों से निवृत होता हुआ, अहिंसा को ही निर्दोष रूप में अथवा अत्यन्त विशुद्धरूप, निर्मलरूप, स्वच्छरूप में अपनाता है'[9]। अहिंसा के सिद्ध हो जाने पर उससे उत्पन्न भाव के विषय में लिखा है-'जिस अहिंसा के सिद्ध होने पर उस व्यक्ति के

---

[1] - शोधार्थी, 19102, श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

[2] -पाणिनीय धातुपाठः(2.2 प0), सम्पादक-युधिष्ठिर मीमांसक, प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ 131021 जिला-सोनीपत (हरियाणा), संस्करण-अगस्त, सन् 2001।

[3] -यमनियमासनाप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।– पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद-2.29, प्रकाशक-गीताप्रेस गोरखपुर-273005, पृष्ठ-63।

[4]-तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।–पातञ्जल-योगदर्शन-भाष्यम्-2.29, भाष्यकार-आचार्य राजवीर शास्त्री(सं0 दयानन्द संदेश) प्रकाशक-आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली-06, संस्करण पाँचवां, दिसम्बर 2010, पृष्ठ-271।

[5] -माधवीयधातुवृत्तिः दिवादिगण 94, पृष्ठ-432, संस्करण 1983, प्रकाशक- तारा बुक एजेंसी, वाराणसी।

[6]- संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-1999 पृष्ठ-482, 134।

[7] -अनभिद्रोहो अहिंसा।–पातञ्जल-योगदर्शन-भाष्यम्-2.30, व्याख्याकार-डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, प्रकाशक-चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी संस्करण 2019, पृष्ठ-268।

[8]-संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-1999 पृष्ठ-134।

[9]-उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते। तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते। तथा चोक्तम्-"स खल्वयं ब्राह्मणो यथा तथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो

प्रति सभी प्राणी वैर का परित्याग कर देते हैं[1], जिस वैर के कारण समाज, परिवार और राष्ट्र तक नष्ट होते हुए दिखायी दे रहे हैं। समाज में सौमनस्यता का विकास इसी अहिंसा से सम्भव है। इस प्रकार अहिंसा सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का प्रकाशन करती है, इस संसार में ऐसा कौन प्राणी होगा जो अहिंसादि धर्म की कामना न करता हो हमारा सत्यसनातन धर्म ही हमें यह शिक्षा देता है अन्य मतों में हिंसादि कार्य जानवरों को मार के खाना ही जिनका धर्म है वह बड़े निर्दयी हैं जिसकी अवहेलना महर्षि दयानन्द भी सत्यार्थप्रकाशादि अन्य ग्रन्थों में करते है। उसी को महर्षि दयानन्द मन्त्र में कह रहें है, अहिंसा की इच्छा करनेवाले के लिए अध्वर्यू पद का प्रयोग मन्त्र में हुआ है-

वृष्णः कोशः पवते मध्वं ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति॥[2]

मन्त्र के ऋषि गृत्यमदः तथा देवता इन्द्र है। मन्त्र में समागत **अध्वर्यू** पद का अर्थ महर्षि नें ‘**अपने को अहिंसा की इच्छा करनेवाले**’ किया है।[3] भाष्यकार मनुष्यों को सूर्यादि के गुणों को धारण कर सभी को अन्धकार से प्रकाश की और ले जाने का बात मन्त्र में करते है “हे मनुष्यो! जैसे (मध्वः) शहद वा मधुर रस की (ऊर्मिः) तरङ्ग वा (वृष्णः) जल वर्षानेवाले सूर्य से (कोशः) मेघ (वृषभान्नाय) श्रेष्ठ जिससे अन्न हो उस (वृषभाय) श्रेष्ठ के लिये (पवते) प्राप्त होता वा जैसे (पातवे) पीने के लिये (वृषभासः) वर्षनेवाले (अद्रयः) मेघ (वृषभाय) दुष्टों की शक्ति को बांधनेवाले के लिये (वृषणम्) बलकारक (सोमम्) सोमलतादि ओषधि रस को और (वृषणा) श्रेष्ठ (अध्वर्यू) अपने को अहिंसा की इच्छा करनेवाले का (सुष्वति) सार निकालते हैं‘ वैसे तुम भी निकालनेवाले हूजिये।”

इस प्रकार अध्वर्यू पद का अर्थ **अहिंसा की इच्छा करने वाले** करते हैं व अन्य स्थानों पर प्रयुक्त हुए अध्वर्युः/अध्वर्य्युः पद का अर्थ भी महर्षि दयानन्द ने **अपने को अहिंसनीय व्यवहार की इच्छा करने वाला** किया है।

अहिंसा धर्मरूपी यज्ञ

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान्।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते॥[4]

मन्त्र के ऋषि उत्कीलः तथा देवता अग्नि है। मन्त्र का हिन्दी पदार्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने **यज्ञस्य** पद का अर्थ ‘**अहिंसा धर्म के** किया है।[5] महर्षि ने यहाँ यज्ञ को अहिंसा की उपाधि दी है अर्थात् यज्ञ व अहिंसा हो पृथक न समझकर

निवर्त्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति।” पातञ्जल-योगदर्शन-भाष्यम्-2.30, भाष्यकार-आचार्य राजवीर शास्त्री(सं0 दयानन्द संदेश) प्रकाशक-आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली-06, संस्करण पाँचवां, दिसम्बर 2010, पृष्ठ-278-279।

1-अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।-पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद-2.35, प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर-273005, पृष्ठ-67।

2 -ऋग्वेद संहिता 2.16.5,

3 -(वृष्णः) वर्षकात् सूर्य्यात् (कोशः) मेघः (पवते) प्राप्नोति। पवत इति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०**2.14)**। (मध्वः) मधोः (ऊर्मिः) तरङ्गः (वृषभान्नाय) वृषभमन्नं यस्मात्तस्मै (वृषभाय) श्रेष्ठाय (पातवे) पातुम् (वृषणा) वरौ (अध्वर्यू) आत्मनोऽध्वरमहिंसामिच्छू (वृषभासः) वर्षकाः (अद्रयः) मेघाः (वृषणम्) बलकरम् (सोमम्) सोमलताद्योषधिरसम् (वृषभाय) दुष्टशक्तिप्रतिबन्धकाय (सुष्वति) सुन्वति। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुरदभ्यस्तादिति झोऽदादेशः।

4 -ऋग्वेद संहिता 3.15.4,

5 -हे (सुप्रणीते) उत्कृष्ट न्यायकारी (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (अषाळ्हः) दूसरे से नहीं पराजय के योग्य विद्वान् (वृषभः) बलवान् पुरुष! आप (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्यवाली (पुरः) नगरियों में (दिदीहि) धर्ममिश्रित कर्मों का प्रकाश कीजिये। हे (जातवेदः) सकलविद्यापूरित विद्वन् पुरुष! (प्रथमस्य) प्रथमाश्रमब्रह्मचर्य्यरूप (पायोः) रक्षाकारक (बृहतः) श्रेष्ठ (यज्ञस्य) अहिंसा धर्म के (नेता) उत्तम रीति से निर्वाहक हुए और (सञ्जिगीवान्) उत्तम प्रकार जयशाली होइये।

उन्होने एक माना है। जबकि पदार्थ में यज्ञ का अर्थ विद्वत्सत्कारादेः करते है।[1] मन्त्र के भावार्थ में प्रजा को उत्तम शिक्षा, व ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के निर्वाह कर ऐश्वर्य प्राप्तयुक्त होने को कहा है।

इस प्रकार यज्ञस्य पद का अर्थ अहिंसा धर्म किया गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद के कई मन्त्रों में यज्ञस्य का अर्थ अहिंसारुप यज्ञ किया है। महर्षि दयानन्द मनुष्यों को उपदेश कर भावार्थ में कहते है ३हे मनुष्यो में यज्ञ वाले करने यज्ञ जैसे! हैं करते उपकार का संसार देकर आहुति में अग्नि उस करके स्थापित प्रकार उत्तम प्रथम को अग्निए वैसे ही आत्मा के आगे परमात्मा को संस्थापित करके वहाँ मन आदि का हवन करके और प्रत्यक्ष करके उसके उपदेश से जगत् का उपकार करो।३

हिंसारहित धर्म मनुष्य की उन्नति में सहायक

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥[2]

मन्त्र के ऋषि कण्वो घौरः तथा देवता आदित्याः है। मन्त्र में **अस्तृतः** पद का अर्थ भाष्यकार ने **हिंसारहित** किया है। ३जो के मनुष्यों (रत्नम्) सब (विश्वम्) से प्राण वा मन आत्मा (त्मना) वह (सः) है मनुष्य (मर्त्यः) हिंसारहित (अस्तृतः) उत्तम सब (तोकम्) और (उत) द्रव्य उत्तम से उत्तम (वसु) वाले कराने रमण के मनों गुणों से युक्त पुत्रों को अच्छ) है। होता प्राप्त प्रकार अच्छे (गच्छतिश[3]

अहिंसा से सुख की प्राप्ति-

स इत्तमौऽवयुनं ततन्वत् सूर्येण वयुनवच्चकार। कुदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः॥[4]

मन्त्र का ऋषि भरद्वाजो बार्हस्पत्यः तथा देवता इन्द्रः है। भाष्यकार मन्त्र में उपमालङ्कार मानते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य अहिंसा धर्म को स्वीकार कर और विज्ञान बढ़ाय के परमेश्वर की प्राप्ति की चिकीर्षा करते हैंए वे विस्तीर्ण सुख को प्राप्त होते हैं।[5]३ इस प्रकार सुख की प्राप्ति का मार्ग अहिंसा धर्म को बताते है। तथा अहिंसा का फल बताते हुए कहा है जो लोग अहिंसा आदि कर्म्मों को कर और विद्वान् होकर परोपकारी होंते है, वे अन्तरिक्ष में सूर्य्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित होते है।[6] तथा जैसे सूर्य्यय नदीए शैल और ओषधि आदिकों को किरणों के द्वारा पुष्ट करने वा उनको सुखानेवाला होता हैए वैसे मित्रजन धर्म में पुष्टिकारक और अधर्म से निवर्त्तक होते हैं।[7]

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य। तपौ वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥[8]

इस मन्त्र के ऋषि वैश्वामित्रः तथा देवता अग्नि है। मन्त्र मे ६**अररुषः**७ पद प्रयुक्त हुआ है। जिसका अर्थ भाष्यकार ६**अहिंसकस्य**७ अर्थात् ६**अहिंसायुक्त ग्रहण**७ करते है।[1] ३हे (तपो) तपस्वी! (अग्ने) दुष्ट जनों के अग्नि के सदृश दाहकर्ता! आप

---

[1] -(सञ्जिगीवान्) सम्यग् विजेता सन् (यज्ञस्य) विद्वत्सत्कारादेः (नेता) प्रापकः (प्रथमस्य) आदिमाश्रमब्रह्मचर्य्यस्य (पायोः) रक्षकस्य (जातवेदः) जातविद्यः (बृहतः) महतः (सुप्रणीते) शोभना प्रकृष्टा नीतिर्न्यायो यस्य तत्सम्बुद्धौ।

[2] -ऋग्वेद संहिता 1.41.6,

[3] -;सः) वक्ष्यमाणः (रत्नम्) रमन्ते जनानां मनांसि यस्मिंस्तत् (मर्त्यः) मनुष्यः (वसु) उत्तमं द्रव्यम् (विश्वम्) सर्वम् (तोकम्) उत्तमगुणवदपत्यम्। तोकमित्यपत्यनामसु पठितम्। (निघं॰2.2) (उत) अपि (त्मना) आत्मना मनसा प्राणेन वा। अत्र मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः। (अष्टा॰6.4.141) अनेनास्याकारलोपः। (अच्छ) सम्यक् प्रकारेण। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (गच्छति) प्राप्नोति (अस्तृतः) अहिंसितस्सन्।

[4] -ऋग्वेद संहिता 6.21.3,

[5] -अत्रोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अहिंसाधर्मं स्वीकृत्य विज्ञानं वर्धयित्वा परमेश्वरप्राप्तिं चिकीर्षन्ति ते विस्तीर्णं सुखं लभन्ते।

[6] -ये अहिंसादिकर्माणि कृत्वा विद्वांसो भूत्वा परोपकारिणः स्युस्तेऽन्तरिक्षे सूर्य्य इव सुप्रकाशिता भवेयुः। ऋग्वेद संहिता ,4.6.4

[7] -यथा सूर्यो नदीशैलौषध्यादीनां किरणद्वारा पोषकः शोषको वा भवति तथा सखायो धर्मे पोषका अधर्मे शोषका अर्थात् धर्मे प्रवर्त्तका अधर्मान् निवर्त्तका भवन्ति। ,3.5.4 संहिता ऋग्वेद-

[8] -ऋग्वेद संहिता 3.18.2,

(अन्तरान्) भेद को प्राप्त (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुतप) सन्तापयुक्त तथा (अररुषः) अहिंसायुक्त (परस्य) श्रेष्ठ जन की (शंसम्) प्रशंसा करो। हे (तपो) दुष्ट पुरुषों के दाहकारी (वसो) उत्तम गुणों के निवासी (चिकितानः) ज्ञानवान् वा बोधकारक आप (अचित्तान्) दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिये और ये (अजराः) वृद्धावस्थारूप रोग से रहित (अयासः) विज्ञानयुक्त पुरुष (ते) आपके समीप (वि) (तिष्ठन्ताम्) वर्त्तमान हों।श अन्त में भावार्थ में सुख की परिभाषा देते हुए कहते है शजो मनुष्य शत्रुओं को पृथक् कर धार्मिकए यथार्थवक्ताए सत्यवादी पुरुषों का सत्कार करकेए सब जनों के लिये सुखवृद्धि करते हैंए वे भी सुख पाते हैं।श[2]

इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि से पृथक अहिंसा का फल बताते हुए कैसे अहिंसायुक्त व्यक्ति प्रशंसा सुख पाता है यह बताते हैं।

हिंसायुक्त प्राणी को दण्ड

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः। राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥[3]

इस मन्त्र के ऋषि श्रुतविदात्रेयः तथा देवता मित्रावरुणौ है। मन्त्र में ष**अक्रविहस्ता**ष पद प्रयुक्त हुआ है, भाष्यकार अक्रविहस्ता पद का अर्थ ष**नहीं हिंसा करने वाले हस्त जिनके वा दानशील हस्त जिनके वे**ष **ऐसा** करते हैं।[4] भाष्यकार पदार्थ में मन्त्री व राजाजनों को उपदेश कर कहते है शहे (वरुणा) अति श्रेष्ठ सभा और सेना के स्वामी राजा और मन्त्री जनो! वायु और सूर्य के सदृश (अक्रविहस्ता) नहीं हिंसा करने वाले हस्त जिनके वा दानशील हस्त जिनके वे (परस्पा) दूसरों की रक्षा करने वाले (राजाना) प्रकाशमान और (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (अहृणीयमाना) क्रोध से रहित आचरण करते हुए (द्वौ) दोनों आप (इळासु) पृथिवियों के (अन्तः) मध्य में (सुकृते) धर्मयुक्त काम में वर्त्तमान (सह) साथ (यम्) जिसको (त्रासाथे) भय देवें उस (सहस्रस्थूणम्) सहस्र वा असंख्य थूनी वाले जगतए राज्य वा वाहन को (बिभृथः) धारण करो।श ऐसा महर्षि भाष्य करते है व मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार मानते हुए मन्त्र का भाव प्रकट करते हुए कहा है।[5]

इस प्रकार राजा और मन्त्रीजन! स्वयं धर्मात्मा होकर सहस्र शाखा जिसकी ऐसे राज्य के रक्षण के लिये दुष्टों को दण्ड देकर और श्रेष्ठों का सत्कार करके यशस्वी होवें।श

परमात्मा के हिंसारहितादि गुण

महर्षि दयानन्द ऋग्वेदमन्त्रों में हिंसा रहित आदि गुणों की शक्ति से ही परमात्मा यह लोक व तारामण्डल अपने-अपने स्थान पर स्थित कियें हुए है व प्रकाशित हो रहे है ऐसा कहते है-

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥[6]

---

[1] -(तपो) तपस्विन् (सु) (अग्ने) दुष्टान् प्रति पावकवद्वर्त्तमान (अन्तरान्) भिन्नान् (अमित्रान्) शत्रून् (तप) सन्तापय (शंसम्) प्रशंसाम् (अररुषः) अहिंसकस्य (परस्य) श्रेष्ठस्य (तपो) दुष्टानां पुरुषाणां दाहक (वसो) यस्सद्गुणेषु वसति तत्सम्बुद्धौ (चिकितानः) ज्ञानवान् ज्ञापकः (अचित्तान्) प्राप्तदरिद्रावस्थान् (वि) (ते) तव (तिष्ठन्ताम्) (अजराः) जरारोगरहिताः (अयासः) विज्ञानवन्तः।

[2] -ये मनुष्याः शत्रून्निवार्य्य धार्मिकानाप्तान् सत्कृत्य सर्वार्थं सुखं वर्द्धयन्ति तेऽपि सुखमाप्नुवन्ति।

[3] -ऋग्वेद संहिता 5.62.6,

[4] -(अक्रविहस्ता) अहिंसाहस्तौ दानशीलहस्तौ वा (सुकृते) धर्म्ये कर्मणि (परस्पा) यौ परां पातो रक्षतस्तौ (यम्) (त्रासाथे) भयं दद्यातम् (वरुणा) अतिश्रेष्ठौ (इळासु) पृथिवीषु (अन्तः) मध्ये (राजाना) राजमानौ (क्षत्रम्) राज्यं धनं वा (अहृणीयमाना) क्रोधरहिताचरणौ सन्तौ (सहस्रस्थूणम्) सहस्रमसंख्या वा स्थूणा यस्मिंस्तज्जगत् राज्यं यानं वा (बिभृथः) धरथः (सह) सार्धम् (द्वौ)।

[5] -अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे राजामात्या! भवन्तः स्वयं धर्मात्मानो भूत्वा सहस्रशाखस्य राज्यस्य रक्षणाय दुष्टान् दण्डयित्वा श्रेष्ठान् सत्कृत्य यशस्विनो भवन्तु।

[6] -ऋग्वेद संहिता 1.6.1,

मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दाः तथा देवता इन्द्रः है। मन्त्र में समागत **"अरुषम्"** पद का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती अहिंसा का समर्थन करते हुए **"अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त होनेवाले हिंसारहित सब सुख को करने"** करते है[1] योगसूत्र के अनुसार अहिंसा को महर्षि दयानन्द इस प्रकार कहते है "जो मनुष्य (अरुषम्) अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त होनेवाले हिंसारहित सब सुख को करने (चरन्तम्) सब जगत् को जानने वा सब में व्याप्त (परितस्थुषः) सब मनुष्य वा स्थावर जङ्गम पदार्थ और चराचर जगत् में भरपूर हो रहा है, (ब्रध्नम्) उस महान् परमेश्वर को उपासना योग द्वारा प्राप्त होते हैं, वे (दिवि) प्रकाशरूप परमेश्वर और बाहर सूर्य्य वा पवन के बीच में (रोचना) ज्ञान से प्रकाशमान होके (रोचन्ते) आनन्द में प्रकाशित होते हैं। तथा जो मनुष्य (अरुषम्) दृष्टिगोचर में रूप का प्रकाश करने तथा अग्निरूप होने से लाल गुणयुक्त (चरन्तम्) सर्वत्र गमन करनेवाले (ब्रध्नम्) महान् सूर्य्य और अग्नि को शिल्पविद्या में (परियुञ्जन्ति) सब प्रकार से युक्त करते हैं, वे जैसे (दिवि) सूर्य्यादि के गुणों के प्रकाश में पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे (रोचनाः) तेजस्वी होके (रोचन्ते) नित्य उत्तम-उत्तम आनन्द से प्रकाशित होते हैं।" भावार्थ में इसका वर्णन नहीं मिलता है।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति॥[2]

मन्त्र के ऋषि शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः तथा देवता वरुणः है। मन्त्र में समागत **"अदब्धानि"** पद का अर्थ स्वामी जी ने **"हिंसारहित"** किया है।[3] जो लोक अन्तरिक्ष में दिखाई पड़ते हैं, वे किस के ऊपर वा किसने धारण किये हैं, इस विषय का उपदेश मन्त्र में करते है, महर्षि मन्त्र में श्लेषालङ्कार मानकर पदार्थ में लिखा है[4] "हम पूछते हैं कि जो ये (अमी) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (ऋक्षाः) सूर्य्यचन्द्रतारकादि नक्षत्र लोक किसने (उच्चाः) ऊपर को ठहरे हुए (निहितासः) यथायोग्य अपनी-अपनी कक्षा में ठहराये हैं, क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (ददृश्रे) देख पड़ते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहाँ (ईयुः) जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर-जो (वरुणस्य) परमेश्वर वा सूर्य के (अदब्धानि) हिंसारहित (व्रतानि) नियम वा कर्म हैं कि जिनसे ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तम्) रात्रि में (विचाकशत्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं, ये कहीं नहीं जाते न आते हैं, किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं (चन्द्रमाः) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी-अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य्य के प्रकाश वा किसी लोक की आड़ से नहीं दीखते हैं, ये प्रश्नों के उत्तर हैं।"

भाष्यकार उत्तर देते हुए कहते है परमात्मा के हिंसा रहित आदि गुणों से ही ये लोक व तारामण्डल अपने अपने स्थान पर स्थित है व प्रकाशमान हो रहे है। यहाँ महर्षि दयानन्द महर्षि पतञ्जलि उपदेशित अहिंसा के फलों से आगे की स्थिति का वर्णन कर रहे हैबत गुण का परमात्मा को अहिंसा ,ाकर अहिंसा का महत्त्व समझा रहे है।

इसी प्रकार महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदभाष्य में अहिंसारूप यज्ञ के अर्थ में **अध्वराणाम्, अध्वराय, स्वध्वरे, अध्वरेषु** व अहिंसादि कर्म से युक्त अर्थ में **स्वध्वरा, स्वधरम्, स्वध्वरः** आदि पदों का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है तथा अहिंसाओं का आचरण करने के अर्थ में **अशस्ती, अहिंसनीय** अर्थ में **अरिष्टः** पद तथा अहिंसादि धर्मयुक्त में **अथर्युम्, अध्वर्यवः** पद का प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। महर्षि दयानन्द अपने ऋग्वेद भाष्य में अहिंसादि गुणों के ग्रहण करने की बात करते हैं तथा असत्यवादियों को दण्ड देने की, और जरूरत पड़ने पर राक्षसीवृत्ती वालों का वध तक करने का निर्देश करते हैं व अहिंसाधर्म युक्त जीव संसार के सुखों को प्राप्त कर परम ऐश्वर्य को पाता है वही जो दूसरों की हिंसा करता है, वहा दण्ड का अधिकारी होता है। वेद संहिताओं में गौ पद के लिए अघ्न्या शब्द उपलब्ध होता है जिसका अर्थ है."हिंसा के

[1] - वा। रक्तगुणविशिष्टमादित्यं रूपप्रकाशकं देशे बाह्ये तथा प्राणवायुं परमेश्वरं सीदन्तमहिंसकं मर्मसु सर्वेषु (अरुषम्) (7.3निघं॰) पठितम्। रूपनामसु अरुषमिति

[2] -ऋग्वेद संहिता 1.24.10

[3] -(अदब्धानि) अहिंसनीयानि (वरुणस्य) जगदीश्वरस्य सूर्यस्य वा (व्रतानि) कर्माणि नियमा वा (विचाकशत्) विशिष्टतया प्रकाशमानः (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (नक्तम्) रात्रौ (एति) प्रकाशं प्राप्नोति।

[4] -अत्र श्लेषालङ्कारः।

अयोग्यश्। गौ को मारने वाले को सीसे की गोली से मारने का आदेश वेदसंहिता[1] में उपलब्ध होता है[2]। महर्षि ऋग्वेद भाष्य में अहिंसा से अतिरिक्त हिंसारहित अर्थ में अध्वरेषुए अरुषम्ए अदब्धानिए अस्तृतःए अथर्वाए अहिंसानस्यए अदब्धैःए अध्वरेषुए दूळभासः आदि पद उपलब्ध होते है तथा महर्षि दयानन्द ने अंहिसा का विस्तार करते हुए मन्त्रों में मारने शब्द का भी प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है। जिसमें महर्षि अन्याय से किसी प्राणी को मारने, अपराधी को दण्ड देने, शत्रुओं से रक्षा करने आदि स्थानों पर हिंसा का रूप मानते हैं जैसे दुष्टों को मारने में निपुण मनुष्य के लिए **मेधिराः, रिशादसः, उग्रः** पद का प्रयोग वा मारने की इच्छा करते हुए शत्रु से रक्षा अर्थ में **जिघांसतः** पद का प्रयोग, रोकनेए बांधने और मारने रूप कर्मो के लिये **प्रतिष्कभे** पद का प्रयोग अथवा मारनेए शाप देने के अर्थ में **चतुरः** पद का प्रयोग भाष्य में करते है।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती मन्त्रों में कई स्थानों पर न्याय व्यवस्था सूचारु रूप से चलाने के लिए, शत्रुओं, अधर्मियों व चोरों से प्रजा व धार्मिक मनुष्यों की रक्षा के लिए, अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग व हिंसा की आज्ञा देते है।

[1]-अथर्ववेदभाष्यम् , भाष्यकार प्रो0 विश्वनाथ विद्यालंकार विद्यामार्तण्ड, प्रकाशक-स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, वर्ष 2013, प्रथम भाग, पृष्ठ 31

[2]-यदिÂ नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वां सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।।- अथर्ववेद 1.16.4